दो चुनौतियां : उदारीकरण और लोकप्रियतावाद

❑ विनोद रैना

मित्रों, मैं यहां पर, इस बैठक में एक समर्थन के रूप में आया था, एक सॉलिडेरिटी के रूप में मुझे एक समर्थन की भावना, एक सॉलिडेरिटी की भावना क्यों लगी, मैं यहीं से शुरू करूंगा । मेरा व्यक्तिगत लोक जुम्बिश परिषद के कार्यक्रमों से पिछले आठ नौ वर्षों में बहुत सीधा संबंध नहीं रहा है । मेरे साथ जुड़े हुए बहुत लोगों का रहा है, लेकिन मेरा व्यक्तिगत नहीं रहा है, इसलिए लोकजुम्बिश के कार्यक्रमों के बारे में मुझे एक तरह से दूसरे लोगों से जानकारी है, खुद उनसे गहरे से नहीं जुड़ा हूं । लेकिन पिछले कुछ महीनों में जो घटनाएं घटी, जो चाहे अखबार के माध्यम से हों या अन्य लोगों से मैंने सुनी, उससे हमेशा ये लगा कि ये ठीक नहीं है और हम लोग दूसरे विचार के लोग हैं, हम लोगों को मिलकर इसके बारे में सोचना चाहिए । ये भावना पैदा हुई और इसी भावना के तहत, सुना कि यहां पर कोई ऐसी सभा है तो मुझे लगा कि इस समर्थन की भावना से वहां पर मौजूद होना, शायद जरूरी है और अच्छा भी लगेगा । तो क्यों ऐसा लगा कि लोक जुम्बिश में जो पिछले महीने ये घटनाएं घटीं, उससे ये भावना क्यों पैदा हुई? मुझे अगर आप बहुत ऑनेस्टली कहने का हक दें, लोक जुम्बिश संगठन में जो फेरबदल हुए हैं, अगर उसके बारे में पूछें तो मुझे मालूम नहीं है । मैं उस पर ये मानता हूं कि मुझे कोई बहुत अधिक समर्थन की भावना नहीं है । क्योंकि मैं बहुत नजदीकी से बिल्कुल एक ऐसी संस्था का, बिल्कुल ही इस तरह का हश्र देख चुका हूं करीबी से और उसमें कुछ मेरी भागीदारी भी रही है । बिल्कुल उसी तरह की संस्था जैसे लोक जुम्बिश है, वो मध्यप्रदेश भोपाल में भारत भवन ट्रस्ट नाम की चीज थी और दस बारह साल उसके काम का बहुत सम्मान हुआ लेकिन वो जो संगठन था वो इसी तरह खत्म हुआ । उसमें और लोक जुम्बिश का जो गठन है और जो ये प्रक्रिया है उसमें बहुत एक जैसी झलक दिखती है । हालांकि क्षेत्र अलग हैं, उसमें संस्कृति कला थी, यहां शिक्षा है - एक जैसे लगते हैं और एक जैसे क्यों लगते हैं, हो सकता बाद की बातचीत में इसे उठायें।

लोकजुम्बिश संगठन आगे कैसे बनेगा, उसमें कौन लोग होंगे, वो क्या शासकीय, अर्धशासकीय संस्था रहेगी, क्या रहेगी - ये तो जानकार लोगों से ही मैं समझना चाहूंगा, मुझे इसके बारे में बहुत जानकारी नहीं है । लेकिन जहां एक सॉलिडेरिटी महसूस हुई वो इस चीज को लेकर हुई कि जो हमको लोक जुम्बिश आन्दोलित करती है वो किस तरह की प्रक्रियाएं हो सकती हैं । और उन प्रक्रियाओं का आगे क्या होगा, इसको लेकर चिंता भी है और उसको लेकर जैसा मैंने कहा एक समर्थन की भावना भी है । बहुत सारी बातें रोहित ने यहां अपने वक्तव्य में कहीं हैं । मैं दोहराना तो नहीं चाहूंगा लेकिन शायद अपने शब्दों में कहना चाहूंगा । शिक्षा स्वतंत्र नहीं है, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक संदर्भों से, ये तो मेरा ख्याल है इसे विशेष स्पष्ट करने की जरूरत नहीं है । इस देश में शिक्षा के ऊपर जो अलग-अलग चिंतन हुए हैं उनमें लोगों के

मतभेद भी रहे हैं, ... और लोगों के कुछ एक जैसे विचार भी रहे हैं।

मुझे लगता है कि एक समूह है, एक बहुत बड़ा समूह है, ये एक विचारधारा है जिसका मैं पक्षधर हूं और मेरा ऐसा मानना है कि शायद इस कमरे में बैठे हुए बहुत सारे लोग उसके पक्षधर होंगे । जिनका यह मानना रहा है हमेशा, कि शिक्षा का एक बहुत बड़ा उद्देश्य हमारे जैसे देश में जहां पर वर्ग, जाति और लिंग के नाम पर इतनी विषमताएं हैं, शिक्षा का एक बहुत बड़ा उद्देश्य है- सशक्तीकरण। ये दोनों चीजें मेरे ख्याल से बहुत सारे मेरे जैसे, हम जैसे लोगों के लिए एक ही शब्द के रूप में हैं । इसमें विचारधारा के रूप में भी, मैं ये कहना चाहूगा कि हमें इतिहास के रूप में मालूम है कि हमारे देश में शिक्षा के जो विचारक रहे हैं, गांधी लें या गांधी की बुनियादी तालीम, टैगोर लें.. उनके आपस में मतभेद भी रहे, भाषा को लेकर, पाश्चात्य शिक्षा और पूर्वी शिक्षा को लेकर, वो मतभेद तो रहे, उनके ऊपर बहस भी चली और मुझे लगता है कि उसमें हम अगर नेहरूवाद भी जोड़ दें जो कि गांधीवाद से बहुत अलग था, कि वो आधुनिक शिक्षा पर जोर देते हुए बुनियादी शिक्षा पर जोर नहीं देता था लेकिन मुझे लगता है इस तथ्य के बावजूद कि जो उनमें अलग सोच थी, उनमें अगर एक कॉमन थ्रेड था, वो एक सूत्र सब में था कि सशक्तिकरण शिक्षा का एक बहुत बड़ा उद्देश्य होना चाहिये । और इन सब विचारकों का ये कॉमन थ्रेड था और उसी से मेरे ख्याल से इन विचारधाराओं को समझने-पढ़ने में एक गहरा नाता मिलता है । तो अलग अलग तरीके से मेरे ख्याल में जिसको हम इंडिपेन्डेट इनीशियेटिव कहेंगे, स्वतंत्र पहल कहेंगे देश में, वो इस सशक्तीकरण को अलग अलग तरीकों से क्रियान्वित करने के प्रयास रहे हैं । और हमेशा साथ साथ में इन प्रयासों का यह भी एक उद्देश्य रहा है कि प्रयास चाहे छोटे हों या बड़े, लेकिन प्रयास इस चीज का एक प्रतीक बने कि जो सरकारी शिक्षा व्यवस्था है, जो एक सबसे बड़ी व्यवस्था इस देश में है, उसके ऊपर इन विचारों का असर पड़े । सरकारी शिक्षा जो है उसमें भी शिक्षा सशक्तीकरण का एक माध्यम बने । इसमें सफलताएं भी रही हैं, असफलताएं भी रहीं हैं । लेकिन मुझे लगता है कि चाहे एक दूरदराज गांव में शिक्षा का काम करने वाली एक छोटी संस्था हो, या बड़ी संस्थाएं हों, जैसे लोक जुम्बिश परिषद- कहीं विचारों में समानता ये रही है कि सशक्तिकरण वाली शिक्षा को आगे बढ़ाएं और वो एक प्लेटफॉर्म बने, ऐसे लोगों का ऐसी संस्थाओं का, ऐसे प्रयासों का जो इस तरह की शिक्षा, सामान्य शिक्षा पर भी एक दबाव डालना चाहते हैं, ये मुझे लगता है कि एक सेन्ट्रल सॉलिडेरिटी हमेशा रही है । चाहे वे लोग एक दूसरे को जानते ही न हों, चाहे वे कभी मिले ही न हों और ये पारस्परिक समझ चाहे वो पाठ्यक्रम हो, चाहे टीचर ट्रैनिंग हो, चाहे वो बर्ताव हो, इसके अलग अलग तरीके रहे हैं, इसके बहुत अलग अलग पहलू रहे हैं, कोई एक पहलू नहीं । ऐसे में मेरे जैसे व्यक्तियों को, पहले ही कहा, कि लोक जुम्बिश के कामों से मैं बहुत नजदीक से नहीं जुड़ा । पर लोक जुम्बिश के प्रयास चाहे वो वैकल्पिक शिक्षा के हों, यही नहीं चाहे वो जन भागीदारी के हों कि खंड समितियां कैसे काम करेंगी, जो ये सोशल मैकनिज्म किस तरह से ऐसी संस्थाओं को एक ऐसी जगह मिले, जो सीखा है , व्यापक रूप से शिक्षा में वो लाया जाये। ये जो विशेष तरीका है । ये अपने आप में बहुत अनूठा क्रिएटिव तरीका है । अगर लोक जुम्बिश परिषद के कामों में कोई बदलाव आने वाला है तो लगता है कि ये चिंता की बात है क्योंकि इससे जो प्रक्रियाएं निकली थीं, वो काफी अनूठी थीं और अगर वो खत्म होंगी या उनको बहुत बड़ा झटका लगेगा तो ये केवल लोक जुम्बिश के लोगों की बात नहीं है, शायद सभी लोगों की बात है। मैं ऐसा महसूस करता हूँ ।

लेकिन थोड़ा, चूंकि रोहित जी ने ये भी कहा है कि हम चाहते हैं, इस गोष्ठी में हम लोक जुम्बिश की ही बात न करें लेकिन जो व्यापक मुद्दे हैं उसमें लोक जुम्बिश को कैसे देखते हैं, उस पर भी बात करें । कौन से वो व्यापक दायरे हैं जिन पर मुझे लगता है, मुझे व्यक्तिगत लगता है कि आज के दिन वो बहुत जरूरी हैं। अब आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक कहना तो ऐसा व्यापक है कि वो व्यापकता तो कभी भी उठ सकती है । इसे थोड़ा और स्पेसिफिक करना पड़ेगा । एक दौर तो मुझे लगता है बहुत साफ है, जो 1992 में से इस देश में चालू हुआ और वो दौर है आर्थिक़ उदारीकरण का। ये 1992 के आई.एम.एफ. ऋण से शुरू हुआ। आर्थिक उदारीकरण जिसके अर्न्तगत कर्ज की ये शर्तें हैं कि जो विभिन्न क्षेत्र हैं उनमें भारत सरकार की किस तरह की भूमिका होगी। ये सभी लोगों को मालूम है, मुझे लगता है कि बहुत कहने की यहां पर जरूरत नहीं है । लेकिन उसमें जो निहित बात थी वो ये थी कि सरकारी खर्चा अनावश्यक चीजों में बंद कर दिया जाये। आई.एम.एफ. के हिसाब से सोशल सेक्टर (सामाजिक क्षेत्र) भी आता है । सामाजिक क्षेत्र पर सरकार को ज्यादा खर्च नहीं करना चाहिए और कोशिश करनी चाहिए कि इन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र से योगदान आये । ये एक बहुत बड़ा बदलाव है जिसकी 1992 से पॉलिसी के रूप में क्रियान्वयन की शुरुआत हुई । और 1992 से ही शिक्षा में इसका जो सीधा असर पड़ा, मुझे लगता है कि जिसका असर लोक जुम्बिश तक ही सीमित नहीं है बल्कि पूरे देश तक है। कि ये जो 1992 में इस देश में हुआ वो उससे पहले 70 और 80 के दशक में और देशों में भी हुआ। एक तरह से आई.एम.एफ. के उदारीकरण के प्रभाव से, और जब सरकारों को कहा जाता है कि सामाजिक क्षेत्र में, शिक्षा जिसमें आती है, आप कम खर्च कीजिए

तो वहां पर विश्व बैंक आकर कहता है, चूंकि आप स्ट्रक्लचरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम में हैं, आपके सामाजिक क्षेत्र पर बुरा असर पड़ेगा, तो हम उस बुरे असर को सही करने के लिए आपको सोशल सैंटीमेंट के अन्तर्गत पैसा देंगे। ये जो तरीका है, ये तरीका मुझे लगता है इतना दोहराया गया है कि ये इस जुगल टीम फंड और बैंक का है, ये बहुत देशों का अनुभव है और यहां पर भी 92 से चल रहा है। 92 में सोशल सैंटिमेंट के अर्न्तगत कम ब्याज पर पैसा दिया जायेगा, जिसको हमारी सरकार ने डी.पी.ई.पी. नाम के प्रोग्राम में बदल दिया है । और डी.पी. ई.पी. प्रोग्राम सीधा आर्थिक उदारीकरण से जुड़ा हुआ प्रयास है या एक कार्यक्रम है ।

वो अच्छा है या बुरा है, उसके क्या असर हैं, मैं उस तरफ नहीं जा रहा हूँ । मैं केवल ये बात रखना चाहता हूं कि ये यहां से, इस स्थिति से, इस समझ से उभरा हुआ कार्यक्रम है। लेकिन डी.पी.ई.पी. के लिए मुझे लगता है कि जो जरूरी विश्लेषण की चीज है वो आज से तीन वर्ष पहले वर्ल्ड बैंक की छपी हुई किताब 'प्राइमरी एजुकेशन इन इंडिया' लगभग 350 पृष्ठ की किताब है, मुझे लगता है कि उसको समझना और उसका विश्लेषण करना बहुत आवश्यक है । समय नहीं है, मैं अपना नजरिया प्रस्तुत करता हूं एक वाक्य में और समय हो तो चर्चा जरूर करें । अगर उस किताब को देखना चाहें, जो ब्लूप्रिंट है कि इस देश की प्राइमरी शिक्षा कैसे आगे बढ़ानी चाहिये, वो इतिहास नहीं है, वो है आगे कैसे बढ़ना है । अगर उसको एक तरफ देखा जाये और इस देश में सरकारी और गैर सरकारी शिक्षा का जो सोच है मैंने पहले कहा कि मतभेद रहे हैं लेकिन 1986 की भारत शासन की शिक्षा नीति को भी देखें और अन्य लोगों के विचार भी देखें तो एक बात साफ दिखती है, बैंक का 'प्राइमरी एजुकेशन इन इंडिया' जो डाक्यूमेंट है, उसमें शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा किसके लिए होनी चाहिये, शिक्षा सशक्तीकरण के लिए होनी चाहिये, वो समाज में जो विषमताए हैं उनको पाटने के लिए होनी चाहिये, इससे कुछ लेना देना नहीं है। वो शिक्षा को टेक्नो मेनेजरियल सिस्टम से कैसे आगे बढ़ाना है जैसे फैक्टरी को चलाना है, वैसे ही शिक्षा को कैसे चलाना है, वो ब्लूप्रिंट है । वो किताब छापने से लेकर टीचर ट्रैनिंग से लेकर पाठ्यक्रम तक सारे जो स्टेशन हैं, वो हैं कि कैसे टेकनोमेनेजरियल सिस्टम में आगे बढ़ाना है ।

मुझे लगता है कि ये तीन वर्ष पुराना डॉक्यूमेंट एक तरह से बहुत बड़ा, मैं कहूंगा कि एक अलग तरह का सोच इस देश में, यह शिक्षा का एक डॉक्यूमेंट है और हम लोग हंसते थे तीन चार वर्ष पहले, हमारे प्लानिंग कमीशन में बैठे हुए प्लानिंग कमीशन के सदस्य, जो नवीं पंचवर्षीय योजना बना रहे थे वो उस किताब को हाथ में लेकर प्लानिंग कमीशन में पढ़ते थे । उस किताब को पढ़ते थे लेकिन 1986 की भारत शासन की शिक्षा नीति उनके हाथ में नहीं होती थी । इतना असर उस तरह की चीजों का हमारे जो नीति बनाने वाले लोग हैं और जो क्रियान्वयन के लोग हैं हर तरफ पड़ा है । तो मुझे लगता है कि एक जो संदर्भ हमको आज देखना पड़ेगा व्यापक संदर्भ में, वो है कि उदारीकरण प्रक्रियाओं का असर शिक्षा में और शिक्षा की विभिन्न विचारधाराओं के ऊपर कैसे पड़ा है । केवल राजस्थान में डी.पी.ई.पी. या लोकजुम्बिश की टकराहट से नहीं पर पूरे देश में जहां पर ऐसी प्रत्यक्ष टक्कराहट न भी दिखती हो वो कैसे हो रहा है ? इस संदर्भ को देखे बिना व्यापक चीज हम नहीं देख पायेंगे। एक तो ये ।

दूसरी चीज, जो हमारा अनुभव मध्यप्रदेश से है उसको मैं यहां रखना चाहूंगा, क्योंकि वो दूसरा ट्रैंड है, व्यापक जिस पर कि शिक्षा में कार्य हो रहा है । एक अच्छी चीज हुई इस देश में, मैं मानता हूं कि अच्छी चीज हुई, वो था 73 वां 74 वां संविधान संशोधन जिसमें पंचायती राज प्रणाली को संवैधानिक दर्जा मिला और एक अलग तरीके से तीसरी या चौथी जो कड़ी है हमारे प्रजातंत्र की, उसको स्थापित किया गया । मुझे लगता है कि सिद्धांत रूप में बहुत लोग उसके खिलाफ नहीं होंगे और मैं तो समर्थन करता हूं उसका।लेकिन इसके साथ जुड गया एक, मैं कहूंगा एक रेहटॉरिकल शब्द, एक नारेबाजी का शब्द - विकेन्द्रीकरण । विकेन्द्रीकरण तो हम सब, मेरे ख्याल से कहते आये हैं कि शिक्षा में विकेन्द्रीकरण होना चाहिए, विकेन्द्रीकरण केवल मैनेजमेंट का नहीं होना चाहिए, मुझे लगता है कि हमारे काम में जो बहुत प्रयास रहा है वो ये था कि शैक्षिक प्रक्रियाओं का भी विकेन्द्रीकरण होना चाहिए ।

सिलेबस और शैक्षणिक प्रक्रियाएं भी केन्द्रित नहीं होनी चाहियें, वे भी विकेन्द्रित होनी चाहिए । ये तो एक मूल सिद्धांत सशक्तीकरण का हममें से बहुत लोगों का रहा है । लेकिन विकेन्द्रीकरण का एक मतलब ये है, दूसरी तरफ है एक खाली नारा - विकेन्द्रीकरण करो, कैसे करेंगे इस पर नहीं सोचेंगे और ये भी नहीं सोच रहे हैं कि किस चीज को विकेन्द्रित करना है। हमारे मध्य प्रदेश में थोड़ा मजाक से हम कहते हैं लेकिन मजाक में गंभीरता भी मिली है कि अगर भ्रष्टाचार विकेन्द्रित होता है तो अच्छा है । भ्रष्टाचार को विकेन्द्रित करो, तो विकेन्द्रित का एक बहुत गलत मायना भी हो सकता है । अगर इसको इस नारेबाजी के रूप में लगाया जाये कि जो चीज विकेन्द्रित होगी, वह अच्छी होगी । लेकिन मध्यप्रदेश से ही चालू हो गया शिक्षा में विकेन्द्रीकरण का इस तरह का एक दौर। मैं जानकारी के लिए कहता हूं कि मध्यप्रदेश में लोक जुम्बिश से अलग एक प्रयास हुआ था, 93,94,95 में, जब वहां पर राज्य सरकार के साथ मिलकर एक नयी नीति बनी थी कि राज्य सरकार की शैक्षणिक प्रक्रियाओं में अशासकीय संस्थाएं

साथ में काम करेंगी और सारा नया पाठ्यक्रम टीचर ट्रैनिंग वगैरह अशासकीय संस्थाएं और राज्य एस. ई. आर.टी. मिलकर करेंगी। और ये यहां तक पहुंचा था कि अखबारों में विज्ञापन आये थे कि कोई भी संस्था जो स्कूली पाठ्यक्रम बनाने में सक्षम है, वो आकर अपना आवेदन दे सकती है और राज्य शासन के साथ सीखना सिखाना नाम की एक पैकेज थी, उसमें मिलकर काम कर सकती है। एक बहुत बड़ा शैक्षणिक बदलाव वहां पर आया था लेकिन ये आज से तीन वर्ष पहले, वो सब खत्म कर दिया गया । क्यों ? क्योंकि राज्य सरकार ने कहा, अब हम शिक्षा को विकेन्द्रीत करेंगे और हम एक एजुकेशन गारंटी स्कीम के अंतर्गत जहां पर स्कूल नहीं हैं वहां पर गुरूजी और कुछ नहीं ... 40 बच्चों के लिए देंगे और ये एजुकेशन गारंटी स्कीम विकेन्द्रित तरीके से पंचायत के अन्तर्गत होगी और उससे आगे बढ़कर बहुत सारी चीजें हो गयीं, 70 हजार टीचर्स को नियुक्त कर दिया गया .. और चूंकि ये चीज उन्होंने पकड़ ली । इसके होते होते जो एक प्रक्रिया चालू हुई थी, उसको वैसे ही खत्म कर दिया गया जैसे शायद लोक जुम्बिश के साथ होने वाली है या हुई है, मुझे ठीक से मालूम नहीं है और इसके बदले ये एजुकेशन गारंटी स्कीम ... जिसको अब अन्य राज्यों की ओर... भारत शासन ने भी कहा कि यह सबसे अच्छी स्कीम है, इसको कॉमन वेल्थ अवार्ड मिला है, वगैरह वगैरह करके और महाराष्ट्र में, आंध्रप्रदेश में इसको कापी किया जा रहा है ।

एक तरफ तो मैंने मैनेजमेंट की बात कही.... मैं इसे साफ शब्दों में कहूं, यह शिक्षा में एक पापुलरिज्म (लोकप्रियतावाद) का दौर आ गया है । पॉपुलरिज्म हम इस देश में जानते थे, 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम के नाम से, इस देश में 'गरीबी हटाओ' के लिए इंदिरा गांधी से लेकर अब तक रूरल डेवलपमेंट के नाम पर बहुत सारे पापुलिस्ट प्रोाग्राम आये थे जिनका मतलब था कि वोट के लिए। पहली दफा मैं देखता हूं कि उस दौर का एक पापुलिस्ट प्रोग्राम शिक्षा में, मध्यप्रदेश में चालू हुआ । और इसको मीडिया में वही समर्थन मिला जो उस समय मीडिया का एक रोल 'गरीबी हटाओ' के लिए था ।

शासन ने बहुत साफ साफ कर रखा है, पिछले चुनाव में जो कांग्रेस पार्टी जीती, उसका एक बहुत बड़ा योगदान था इसमें तो ये दूसरा दौर मुझे लगता है कि पकड़ा है । और आप देख सकते हैं कि इसका पॉलिटिकल फायदा मिलता है, मीडिया ये कहें कि इससे इलेक्शन जीत गये तो ये आगे बढ़ेगा, रुकेगा नहीं ।

लेकिन इसमें निहित है कि जो पहले से ही शिक्षा की गुणवत्ता हमारे देश में लगभग शून्य थी ... जब 70 हजार शिक्षक आप तीन महीने में नियुक्त करेंगे तो 70 हजार शिक्षकों को ट्रेनिंग कौन देगा। और इन 70 हजार शिक्षकों को असेम्बली इलेक्शन से 5 महीने पहले नियुक्त किया गया । तो ये जो दूसरा दौर है और अन्य राज्यों में इसको फैलाने का चल रहा है, जैसे महाराष्ट्र में या और जगह पर कुल मिलाकर मेरा यह कहना है कि दो चैलेंजेज मुझे दिखते हैं इस व्यापक संदर्भ में, एक उदारीकरण इन्डयूस्ड और दूसरा पापुलरिज्म ... । और इन दोनों के पीछे मुझे लगता है कि जो तमाम लोक संगठन हैं, जो शिक्षा और सशक्तिकरण, शिक्षा और गुणवत्ता, शिक्षा और शिक्षा का सही विकेन्द्रीकरण, शैक्षणिक प्रक्रियाओं का क्षमता-निर्माण, जगह जगह पर, जहां पर लोग अपनी संस्कृति, भाषा के आधार पर शिक्षा को बढ़ायें, जो भी अलग अलग पहलू हमारे हैं। मुझे लगता है कि इन दोनों के खिलाफ एक बहुत बड़ा माहौल आज बनाना पड़ेगा । लेकिन मुझे ये भी लगता है कि हम लोग बहुत कम नहीं है, मैं थोड़े बहुत आशावादी मोड़ पर ही छोड़ना चाहता हूं कि ... अगर एक प्रयास किया जा सकता है जिस वजह से मुझे लगा.. यहां ऐसी गोष्ठी बहुत जरूरी है, अभी भी इस देश में उस वर्ल्ड बैंक के दस्तावेज के अलग बेसिक शिक्षा को समझने जानने के लिए बहुत बड़ा समुदाय है, समाज है, वो समाज इसे एकत्रित होकर जन भागीदारी से कर सकता है मैं रोहित जी ने जो सवाल रखा कि कब तक हम देखना चाहते हैं कि कैसे हम इन प्रक्रियाओं के खिलाफ खड़े हों, इन प्रक्रियाओं के खिलाफ कोई एक संस्था कुछ नहीं कर पायेगी, इन प्रक्रियाओं के लिए कोई जन-समुदाय, कोई जन आन्दोलन लड़ सकता है, कोई संस्था नहीं लड़ सकती और अगर वो करना है और उसमें यह गोष्ठी एक प्रयास है तो ये सार्थक है ।